सिद्धिदायक साधनाओं के परीक्षित प्रयोग

भगवती देवी शर्मा

सिद्धिदायक साधनाओं के परीक्षित प्रयोग

(यथार्थ योग)

लेखक :

माता भगवती देवी शर्मा

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ **मूल्य : ४.०० रुपये**

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :

माता भगवती देवी शर्मा

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

सिद्धिदायक साधनाओं के परीक्षित प्रयोग

गायत्री का तत्त्वज्ञान—नन्हे से वटबीज में विशालकाय बरगद का वृक्ष सन्निहित रहता है। मनुष्य की समूची काया का सार-संक्षेप नगण्य से शुक्राणु में समाया होता है। विशालकाय ग्रंथ जरा से माइक्रोफिल्म पर उतार लिए जाते हैं। ठीक इसी प्रकार समूची देव संस्कृति का सारतत्त्व छोटे से गायत्री मंत्र में समाविष्ट है। गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी और अधिष्ठात्री कहा गया है।

गायत्री ब्रह्मविद्या है। उसी को कामधेनु कहते हैं। स्वर्ग के देवता इसी का पयपान करके सोमपान का आनंद लेते और सदा नीरोग, परिपुष्ट एवं युवा बने रहते हैं। गायत्री को कल्पवृक्ष कहा गया है। इसका आश्रय लेने वाला अभावग्रस्त नहीं रहता। गायत्री ही पारस है जिसका आश्रय-सान्निध्य लेने वाला लोहे जैसी कठोरता-कालिमा खोकर स्वर्ण जैसी आभा और गरिमा उपलब्ध करता है। गायत्री ही अमृत है। इसे अंतराल में उतारने वाला अजर-अमर बनता है। स्वर्ग और मुक्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। यह दोनों ही गायत्री द्वारा साधक को अजस्र अनुदान के रूप में अनायास ही मिलते हैं। मान्यता है कि गायत्री माता का सच्चे मन से आँचल पकड़ने वाला कभी कोई निराश नहीं रहता। संकट की घड़ी में वह तरण-तारिणी बनती है। उत्थान के प्रयोजनों में उसका समुचित वरदान मिलता है। अज्ञान के अंधकार का भटकाव दूर करके और सन्मार्ग का सही रास्ता प्राप्त करके चरम प्रगति के लक्ष्य तक जा पहुँचना, गायत्री माता का आश्रय लेने पर सहज संभव होता है।

गायत्री को वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता कहा गया है। वेदमाता इसलिए कि दिव्य ज्ञान के समस्त सूत्र उन चौबीस अक्षरों वाले अति संक्षिप्त, किंतु सारतत्त्व जैसे गायत्री मंत्र में सन्निहित हैं। गायत्री के चार

चरणों का व्याख्यान ब्रह्माजी ने चार वेदों के रूप में चार मुखों से किया था। वेदों के दुरूह ज्ञान का विस्तार—ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृति, सूत्र, पुराण आदि में होता चला गया है। आर्षग्रंथों का समूचा वाङ्मय गायत्री मंत्र की ही व्याख्या-विस्तार समझा जा सकता है। संकेत-सूत्रों में महत्त्वपूर्ण जानकारियों का समावेश रहता है। गायत्री के चौबीस अक्षरों में नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र के समूचे सिद्धांत सन्निहित हैं। इतना छोटा और इतना समग्र धर्मशास्त्र संसार भर में अन्य कहीं कोई नहीं है।

गायत्री को देवमाता कहा गया है। उसका पयपान करने वाला मनुष्य ऊपर उठकर देवत्व का वरण करता है। दैवी शक्तियों से सुसज्जित होता है। देवताओं में जो विभिन्न स्तर की दिव्य सामर्थ्यें हैं, वे गायत्री का पयपान करने से ही उपलब्ध हुई हैं। अवतार चौबीस हुए हैं। इसका रहस्य यह है कि गायत्री के एक-एक अक्षर को एक अवतार के रूप में प्रतिपादित किया गया है। अवतारों की शिक्षा, लीला एवं सामर्थ्य का रहस्य इन्हीं चौबीस अक्षरों में सन्निहित समझा जाना चाहिए। इसी संक्षेप को पुराणों में अवतारों के सुविस्तृत कथानकों के रूप में मनोरंजक एवं सुबोध शैली में समझाया गया है। धरती पर रहते हुए देवत्व प्राप्त करने में गायत्री साधना से बढ़कर और कोई अवलंबन नहीं। निष्ठावान साधक इस महामंत्र की विभिन्न प्रयोजनों के लिए साधना करते और चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियाँ उपलब्ध करते हैं।

गायत्री एक सार्वभौम दर्शन—गायत्री के बीजाक्षरों में **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के आधारभूत सिद्धांतों का समावेश है। वह किसी जाति, देश, धर्म, लिंग की बपौती नहीं। उसे मनुष्य समाज का कोई भी नागरिक प्रसन्नतापूर्वक अपना और भरपूर लाभ उठा सकता है। सूर्य, चंद्र, धरती, वायु, बादल आदि की तरह गायत्री भी विश्व-संपदा है। उसकी प्रेरणा सभी कृत्रिम भेदभावों को मिटाकर विश्व नागरिक की तरह परस्पर स्नेह, सहयोग करने और मिल-बाँटकर खाने का दिशा निर्देश करती है। निकट भविष्य में युग बदलेगा और विश्व-कुटुंब का निर्माण होगा। विभेद और बिलगाव की दीवारें गिरेंगी। एकराष्ट्र,

एकभाषा, एकधर्म, एकव्यवस्था अपनाकर एकात्मता का आदर्श सर्वमान्य बनेगा। इससे कम में प्रस्तुत संकटों और विग्रहों के समाधान की संभावना नहीं, उज्ज्वल भविष्य की संरचना में—विश्व के नए निर्माण-निर्धारण में—गायत्री का तत्त्वदर्शन समूचे मनुष्य समाज को नए ढाँचे में ढलने के लिए विवश करेगा। विश्वमाता अपने पुत्र-परिजनों को विश्व-नागरिकता की उदार दृष्टि अपनाने और विश्व-शांति के आधार बनाने के लिए समर्थ वातावरण उत्पन्न करेंगी। भूतकाल में भी वे विश्व व्यवस्था में उत्पन्न होते रहने वाले असंतुलनों को सँभालने के लिए अपने अवतारी देवदूतों को कार्यक्षेत्र में उतारती रही हैं। इन दिनों भी उन्हीं की प्रेरणा से नए विश्व का नया निर्माण कर सकने वाला प्रवाह—युगांतरीय चेतना के रूप में तूफानी गति से आविर्भूत हो रहा है।

गायत्री मंत्र एक समूचा योगशास्त्र है। उसके चौबीस अक्षरों में चौबीस प्रकार के योगाभ्यासों एवं तप-साधनों का दर्शन-विधान समाविष्ट है। विभिन्न साधकों द्वारा इन्हीं में से किसी का—किन्हीं का—अवलंबन ग्रहण करके अपनी रुचि का साधन-पथ अपनाया जाता है। अध्यात्म साधनाओं का समस्त समुच्चय खोजना हो तो उसे गायत्री मंत्र के चौबीस शक्ति-गुच्छकों में तलाश करना चाहिए।

गायत्री के चौबीस अक्षरों का शास्त्रकारों ने विभिन्न प्रकार के निरूपणों में अपनी-अपनी शैली के अनुसार प्रस्तुतीकरण किया है। चौबीस देवताओं, चौबीस देवियों, चौबीस ऋषियों, चौबीस साधनाओं, चौबीस सिद्धियों का वर्णन आध्यात्मिक ग्रंथों में रहस्यमय भाषा में निरूपित किया गया है। वस्तुतः यह गायत्री के दर्शन, स्वरूप एवं प्रतिफल का ही आलंकारिक वर्णन-विवेचन है।

देवसंस्कृति की अधिष्ठात्री गायत्री—आप्तपुरुषों ने यह नियम बनाया था कि देवसंस्कृति का प्रत्येक अनुयायी अपनी जीवनचर्या में गायत्री तत्त्वदर्शन और साधना विधान का अविच्छिन्न समावेश रखे रहे। इसे किसी भी स्थिति में विलग न होने दे। माता से विलग होकर बालक घाटा ही घाटा उठाता है। पोषण, विकास, दुलार, संरक्षण जैसे महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों में माता से बढ़कर और कोई सहायक नहीं होता।

जिसे माता का दूध, दुलार एवं सहयोग-संरक्षण नहीं मिलता, उस बालक में अनेकों त्रुटियाँ रह जाती हैं। मणिहीन सर्प की दुर्गति ही होती है। अस्तु, कोई भारतीय धर्मानुयायी गायत्री का विस्मरण-परित्याग न करने पाए, इसका देव परंपरा में कठोर निर्धारण किया गया है।

शिखा गायत्री का स्वरूप है। उसे बालों की प्रतिमा के रूप में बनाया और सर्वोच्च शिखर, शीर्ष स्थान पर बिठाया गया है। इसे विवेकशीलता का, सदाशयता का ध्वजारोहण कहना चाहिए। विचार-शक्ति सर्वोपरि है। उसके उच्छृंखल हो उठने पर मदोन्मत्त हाथी द्वारा उत्पन्न किए गए विग्रहों की तरह अनर्थ उपस्थित होता है। हाथी के कंधे पर फीलबान और कान पर अंकुश का अनुशासन रहता है। मानवी विचारों पर आदर्शवादिता का—गायत्री का अनुशासन स्थापित रहे, शिखा स्थापन का तत्त्वज्ञान यही है। भारतीय परंपरा के नर-नारी उसकी स्थापना भावनापूर्वक करते हैं। मुंडन संस्कार वस्तुतः शिखास्थापन संस्कार ही है। उस परंपरा को गायत्री के मानवीकरण की सर्वोच्च शिखर पर की गई प्राण-प्रतिष्ठा ही समझा जाना चाहिए।

शिखा के उपरांत भारतीय संस्कृति का दूसरा प्रतीक है—यज्ञोपवीत। वह विशुद्ध रूप से गायत्री तत्त्वज्ञान का ही प्रतीक-प्रतिनिधि है। गायत्री में नौ शब्द, तीन चरण, तीन व्याहृति, एक ॐकार है। इन्हीं चार तथ्यों को यज्ञोपवीत में नौ सूत्र, तीन लड़ें, तीन ग्रंथियाँ, एक ब्रह्मग्रंथि के रूप में प्रतिनिधित्व दिया गया है। यज्ञोपवीत को कंधे पर, हृदय पर, कलेजे पर, पीठ पर घुमाकर एक प्रकार से मानवी काया के महत्त्वपूर्ण अंग-अवयवों को जकड़ दिया जाता है। कंधे को उत्तरदायित्व का—हृदय को भावना का—कलेजे को पुरुषार्थ का और पीठ को कर्मठता का प्रतीक माना गया है। उन चारों पर गायत्री के प्रतिनिधि यज्ञोपवीत का बंधन, नियंत्रण, अनुशासन बना रहे। यह है—यज्ञोपवीत धारण का तात्त्विक प्रयोजन।

भारतीय धर्म संस्कारों में विद्यारंभ को महत्त्वपूर्ण संस्कार माना गया है। उस अवसर पर उपनयन होता है और गुरुकुल की शिक्षा

आरंभ करते समय गुरुमंत्र के रूप में गायत्री मंत्र दिया जाता है। शिक्षा एवं विद्या की अधिष्ठात्री आद्यशक्ति गायत्री को प्राथमिकता मिले—इस दृष्टि से गायत्री को हर शिक्षार्थी अनिवार्य रूप से अपनी पाठ्य-विधि में समाविष्ट रखता था। विद्या गुरु-शिष्य के समन्वय से चलती है। गुरु सर्वप्रथम जो सिखाता है उसे गुरुमंत्र कहते हैं। भारतीय धर्म में 'गुरुमंत्र' की संज्ञा मात्र गायत्री को मिली है। उपासना के अन्य मंत्रों को देवमंत्र, साधन मंत्र अथवा गुरुजी का मंत्र तो कहा जा सकता है, पर गुरुमंत्र नहीं। सभी धर्मों में एक ही गुरुमंत्र होता है। मुसलमानों में कलमा, ईसाइयों में बपतिस्मा, जैनियों में नमोंकार, बौद्धों में 'त्रिधा गच्छामि' जैसे निर्धारण हैं। भारतीय धर्म का भी एक अनादि गुरुमंत्र है—गायत्री। अन्य मंत्रों की उपासना में बंधन नहीं है, पर प्रत्येक उपासना प्रेमी को गायत्री का तो अपनी साधना में समावेश किए ही रहना चाहिए।

उपासना पद्धति—भारतीय उपासना पद्धति को 'संध्या' कहते हैं। संध्यावंदन प्रातः-सायं, दिन-रात की संधि वेला में होता है। उस विधान में गायत्री अनिवार्य है। किसी को मनमानी करनी हो तो बात दूसरी है, अन्यथा शास्त्र परंपरा के अनुसार संध्या उपासना करनी हो तो उसे गायत्री के बिना नहीं किया जा सकता। अन्य विधान विदित न हों तो संध्या उपासना मात्र गायत्री जाप के रूप में भी की जा सकती है। गायत्री उपासना को धार्मिक नित्यकर्म का एक अनिवार्य अंग माना गया है और उसकी अवहेलना करने पर पाप लगने—पतित होने जैसा भय दिखाकर अवज्ञा का प्रायश्चित करने का नियम बनाया गया है। उस आर्ष परंपरा का ध्यान रखते हुए प्रत्येक भारतीय संस्कृति के अनुयायी को दैनिक जीवन में उसे किसी न किसी रूप में स्थान दिए ही रहना चाहिए। भले ही वह न्यूनतम क्यों न हो !

विभिन्न प्रयोजनों के लिए सांगोपांग गायत्री साधना के स्वरूप में जिन्हें विशेष रुचि हो, वे 'गायत्री महाविज्ञान' ग्रंथ पढ़ लें। किंतु जिन्हें व्यस्तता हो वे भी इतना तो करें ही कि न्यूनतम चौबीस गायत्री मंत्र एक

नियत समय पर जप लिया करें। प्रात: उठते समय, रात्रि को सोते समय, भोजन से पूर्व, सूर्योदय के समय, स्नानोपरांत जैसा कोई भी अपनी सुविधा का समय निश्चित करके उपर्युक्त जप संख्या पूरी की जा सकती है। विधान मालूम न हो तो इतना भर कर लेने से काम चल सकता है। घुटने मोड़कर पालथी मारें, कमर सीधी रखें, आँखें बंद करें, हाथ गोदी में रखें। तीन बार लंबी साँस खींचें और निकालें। इसके उपरांत मुँह, होंठ बंद करके मन ही मन गायत्री जप आरंभ करें। संख्या उँगली के पोरों पर गिनते रहें। जप के साथ प्रात:कालीन स्वर्णिम सूर्य का, गायत्री के प्राण सविता का ध्यान करें और भावना करें कि उनका दिव्य प्रकाश अपने शरीर में प्रवेश करता है। काया को सत्कर्म, बुद्धि को सद्ज्ञान और अंत:करण को सद्भाव देकर ऊँचा उठाने—आगे बढ़ने की प्रखर-प्रेरणा प्रदान करता है।

यह न्यूनतम साधना है जिसे बिना किसी स्थान के भी किया जा सकता है। इससे अधिक करना हो तो घर पर गायत्री माता के चित्र की प्रतिष्ठा सुसज्जित चौकी पर करनी चाहिए और घर के हर सदस्य को इसके प्रात:कालीन नमन-वंदन की आदत डालनी चाहिए। वेदी पर अगरबत्ती, पुष्प, अक्षत, रोली, चंदन, नैवेद्य, आरती, अर्घ्यदान जैसे उपचारों के सहारे सारी पूजा-प्रक्रिया पूरी हो सकती है। जिन्हें अवकाश एवं उत्साह है, वे समीपवर्ती गायत्री उपासकों एवं पुस्तिकाओं के सहारे इस संदर्भ में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। गायत्री मंत्र लेखन—गायत्री चालीसा पाठ, विधिवत एक या पाँच माला का व्रतपालन—नौ दिन के नवरात्रि अनुष्ठान जैसे छोटे-बड़े कितने ही विधि-विधान हैं, जिन्हें जिज्ञासु आसानी से पूछ-तलाश सकते हैं और अपनी रुचि, आवश्यकता, परिस्थिति के अनुरूप निर्धारण कर सकते हैं।

गायत्री उपासना में किसी जाति के वर्ग, लिंग के लिए कोई प्रतिबंध नहीं। सभी धर्म-संप्रदायों के अनुयायी बिना किसी भेदभाव के प्रसन्नतापूर्वक गायत्री उपासना कर सकते हैं। कोई भूल रहने पर भी किसी हानि की संभावना नहीं। थोड़ा करने पर थोड़ा और अधिक

करने पर अधिक फल मिलने की बात तो स्पष्ट है, पर माता की गोद में जाने पर बालक के लिए किसी प्रकार का कोई अनिष्ट होने की आशंका नहीं है। जिन्हें तनिक भी उत्साह उठे वे बिना किसी असमंजस के आरंभ कर दें।

प्रत्येक भावनाशील, धर्मप्रेमी एवं देवसंस्कृति के अनुयायी को गायत्री की गरिमा समझनी चाहिए और उसका आश्रय लेकर आत्म-कल्याण और विश्वकल्याण का दोहरा सौभाग्य प्राप्त करना चाहिए। इस विस्मृत आत्मगरिमा का जो जितना विस्तार करेगा, वह उतना ही श्रेय एवं पुण्य का भागीदार बनेगा।

अग्निहोत्र—गायत्री साधना का अनिवार्य अंग—गायत्री को भारतीय संस्कृति की जननी और यज्ञ को भारतीय धर्म का पिता कहा गया है। दोनों के समन्वय, सहयोग से ही देवसंस्कृति का जन्म एवं विकास परिपोषण संभव हुआ है। गायत्री उपासना के साथ-साथ यज्ञ-प्रक्रिया का किसी न किसी रूप में समावेश करने का विधान है। भले ही वह अगरबत्ती या दीपक जला देने जितना स्वल्प एवं प्रतीकात्मक ही क्यों न हो ! गायत्री उपासना में प्राय: जप के समय अगरबत्ती जलाते हैं। जिसने पूजा-वेदी स्थापित की है, वे दीपक, आरती, धूपबत्ती जैसे ज्योति जलाने वाले उपक्रम रखते हैं। अग्नि-पूजा, अग्निहोत्र कहलाती है। उसका छोटा या बड़ा स्वरूप जहाँ जिससे बन पड़े अपने उपासनात्मक नित्यकर्म में सम्मिलित रखने का भी प्रयत्न करना चाहिए, ताकि माता और पिता दोनों की समान रूप से पूजा-अर्चना, उपासना-अभ्यर्थना होती रहे।

भारतीय धर्म को यज्ञ धर्म माना जाता है। उसमें यज्ञीय भावनाओं के अभिवर्द्धन को बहुत महत्त्व दिया गया है। यज्ञ शब्द का भावार्थ है—पवित्रता, प्रखरता एवं उदारता। यह तत्त्वदर्शन व्यक्तिगत जीवन में भी समाविष्ट रहना चाहिए और उसे लोक-व्यवहार में भी उत्कृष्टता की प्रथा-परंपरा जैसा प्रश्रय मिलना चाहिए। जीवन यज्ञ की चर्चा शास्त्रों में स्थान-स्थान पर हुई है। ब्रह्मयज्ञ, विश्वयज्ञ आदि नामों से समाज में यज्ञीय प्रचलन की प्रमुखता पर बल दिया गया है। पशु-

प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने, पतनोन्मुख प्रवाह को उत्कृष्टता की ओर मोड़ने के अनुबंध-निर्धारण यज्ञ कहलाते हैं। इसी अवलंबन के सहारे मानवी प्रगति संभव हुई है। वर्तमान की स्थिरता एवं उज्ज्वल भविष्य की संभावना भी इसी सदाशयता के अवलंबन पर निर्भर रहेगी।

भारतीय धर्म में यज्ञ को असाधारण महत्त्व दिया गया है। धर्म-कृत्यों में उसकी प्रमुखता है। कोई भी धर्म कार्य ऐसा नहीं जो इस उपचार के बिना संभव होता हो। जन्म से लेकर मरणपर्यंत भारतीय धर्मावलंबियों को सोलह बार संस्कारों की उपचार-प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। इनमें गर्भावस्था का पुंसवन, बालक का नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारंभ ऐसे हैं जिन्हें बाल्यकाल में करना होता है। उन सभी के कर्मकांडों में यज्ञविधान है। शास्त्र विधि से यदि उन उपचारों को करना हो तो यज्ञविधान भी उनमें अनिवार्य रूप से सम्मिलित करना होगा।

यज्ञोपवीत संस्कार का नाम ही 'यज्ञ' की प्रमुखता के कारण हुआ है। यज्ञाग्नि में पवित्र किए गए उपनयन सूत्र को ही यज्ञोपवीत कहते हैं। यह यज्ञ की साक्षी में ही धारण कराया जाता है। इसके उपरांत विवाह संस्कार है। विवाह यज्ञ की साक्षी में ही संपन्न हो सकता है। उसी की सात परिक्रमाएँ करके वर-वधू दो जीवनों को एकात्मता के बंधनों में बाँधते हैं। इस अवसर के यज्ञ को दो लोहखंडों को अटूट रूप से जोड़ने वाले 'बेल्डिंग' की उपमा दी जाती है। हिंदू मृतकों का शरीर चिता में जलाया जाता है और उस अवसर पर कुछ कृत्य उपचार किए जाते हैं। उस पर बारीकी से दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि प्रचलित चिह्न पूजा उस शास्त्रीय विधि-व्यवस्था का ध्वंसावशेष है जिसे 'अंत्येष्टि' कहते हैं। अंत्येष्टि विशुद्ध रूप से एक यज्ञ-प्रक्रिया है जो मृतशरीर की समाप्ति के लिए प्रयुक्त होती है।

इसके अतिरिक्त वानप्रस्थ, श्राद्ध, तर्पण आदि के और भी कई संस्कार उपचार भारतीय धर्मानुयायियों के होते हैं। इन सबमें अग्निहोत्र करना ही होता है।

पर्व-त्योहारों पर घरों की देवियाँ अपना छोटा सा हवन उपचार चूल्हे से अग्नि निकालकर उस पर घी, शक्कर, लौंग, मिष्टान्न आदि चढ़ातीं और उस धर्मकृत्य की चिह्नपूजा स्वयमेव कर लेती देखी जाती हैं। किसी देवी-देवता की अभ्यर्थना में भी वे उसी उपचार को अपनाती हैं।

प्राचीनकाल में यह नियम था कि भोजन करने से पहले उसे अग्निदेवता को—प्रखरता के प्रतीक परमेश्वर को प्रथम भोजन कराया जाए उसके बाद स्वयं खाया जाए। इस परिपाटी के अनुसार रसोई में बने चिकनाई और मिठास वाले पदार्थों में से पाँच ग्रास एक-एक करके पाँच बार में अग्निदेव पर चढ़ाए जाते थे। इसका विधि-विधान एवं मंत्र भाग कुछ विस्तृत भी था और उसे बलिवैश्व या पंचयज्ञ कहते थे। आज भी कितने ही धर्मप्रेमी परिवारों में यह प्रचलन छोटे रूप में विद्यमान है। अधिक न बन पड़े तो भी पहले वे अग्निमुख में पाँच छोटे ग्रासों की पाँच आहुतियाँ गायत्री मंत्र से देते एवं घी, शक्कर के सहारे ज्योति-ज्वाला जलाते हैं। इस प्रचलन से जहाँ घर में धार्मिकता का वातावरण बनाना है, वहाँ एक प्रत्यक्ष निर्धारण यह भी है कि खाने से पहले परमार्थ के परिपोषण का भी ध्यान रखा जाए। अपनी कमाई आप खाकर ही संतुष्ट न रहा जाए। शास्त्र के अनुसार जो अपनी कमाई आप ही खाता रहता है, वह पाप खाने वाला तथा चोरी करने वाला है।

यज्ञ और उसका दर्शन—सदुद्देश्यों को—सत्प्रवृत्तियों को प्राथमिकता देने, उनके परिपोषण-संवर्द्धन की आवश्यकता को अपने निजी उपभोग से भी अधिक महत्त्व देने की नीति ही 'यज्ञ-दर्शन' है। इसी को अपने दृष्टिकोण एवं व्यवहार में समाविष्ट करके इस देश के महान निवासी देवमानव बने और अपनी उत्कृष्टता से न केवल अपने देश को वरन विश्व वातावरण को सुख-शांति से भरा-पूरा बनाने में सफल हुए थे। आज की संकीर्ण स्वार्थपरता, निष्ठुरता एवं आपा-धापी ने ही अनेकानेक समस्याओं, विग्रहों, विपत्तियों एवं विभीषिकाओं

को जन्म दिया है। समाधान के लिए किए जा रहे छिटपुट, उथले, सामयिक एवं स्थानीय उपाय-उपचारों से चिरस्थायी हल निकलने की आशा नहीं की जानी चाहिए। कीचड़ सड़ती है तो दुर्गंध भरे विषाणु और मक्खी-मच्छर उपजते हैं। रक्त में विषाक्तता भर जाने से चित्र-विचित्र प्रकार के फोड़े-चकत्ते उठते हैं। बाह्य उपचारों से क्षणिक लाभ होता है। स्थायी निराकरण के लिए कीचड़ हटाने एवं रक्त-शोधन जैसे बड़े कदम उठाने पड़ते हैं। मन:क्षेत्र में घुसी हुई निकृष्टता का निराकरण ही व्यक्ति को महान एवं समाज को सुसंस्कृत बनाने का एकमात्र उपाय है। इस उपाय को जन-जन द्वारा अपनाए जाने की प्रेरणा को अग्निहोत्र अपने अंतराल में सँजोए हुए हैं। प्राचीनकाल में कर्मकांड के माध्यम से लोकशिक्षण के जो प्रयोग चलते थे, उनमें यज्ञ-प्रक्रिया को प्रमुख माना गया था। उस माध्यम से यज्ञ-दर्शन को जन-जन के मन में उतारने का प्रबल प्रयत्न निरंतर चलता रहता था। इस सदुद्देश्य के लिए समय-समय पर छोटे-बड़े यज्ञकृत्यों का सिलसिला निरंतर चलता रहता था। क्रिया के साथ प्रेरणा से ही धर्मकृत्यों की पूर्णता एवं समग्रता बनती है।

यज्ञ-दर्शन की अवधारणा यदि ठीक तरह जनमानस में प्रतिष्ठापित कराई जा सके तो इतने भर से प्राचीनकाल जैसे स्वर्णयुग—सतयुग को वापस ला सकना संभव हो सकता है। प्रचलित अनेक वादों में 'यज्ञवाद' की गरिमा सर्वोपरि है। उसमें व्यक्ति और समाज के समग्र उत्थान की सर्वतोमुखी संभावनाएँ विद्यमान हैं। यही कारण है कि आदि वेद-ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में यज्ञाग्नि को पुरोहित, मार्गदर्शक कहा गया है। बताया गया है कि याज्ञिक रत्नराशि से भरे-पूरे देवमानव बनते हैं। इस कथन की सचाई को असंख्य महामानवों द्वारा अपनाई गई जीवन-नीति और उसकी परिणति को देखकर सहज ही जाना जा सकता है।

यज्ञ से शिक्षण—यज्ञाग्नि की कई परोक्ष शिक्षाएँ हैं, जैसे—(१) अग्नि जब तक जीवित है, तब तक गरम और प्रकाशवान बना रहता है। अग्निपूजकों को सक्रिय एवं प्रकाशवान बनकर रहना चाहिए। (२) अग्नि के निकट जो भी जाता है, वह उसी के तत्सम बन जाता

है। हमें चंदनवृक्ष की तरह संपर्क में आने वाले को भी ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। (३) अग्नि का मुख कभी नीचा नहीं होता। दबाव पड़ने पर भी ऊँचा ही बना रहता है। अग्नि पुरोहित के इस उदाहरण, उपदेश का आह्वान करके हमें भी अपने व्यक्तित्व को निकृष्ट नहीं बनने देना चाहिए। (४) अग्नि को जो भी प्राप्त होता है उसे अपने लिए संग्रह नहीं करता वरन तत्काल विश्व वातावरण में वितरित कर देता है। हमें संग्रही नहीं उदार, परमार्थरत होना चाहिए। (५) यज्ञावशिष्ट भस्म है। जो बताती है कि जीवन का समापन भस्म मात्र अवशेष में रह जाता है। अस्तु, न तो वैभव का गर्व करना चाहिए, न लोभ-मोह से ग्रस्त होना चाहिए और न मरण का विस्मरण करना चाहिए। जो इतना कर सकेगा उसके जीवन की सार्थकता में संदेह नहीं रह जाएगा।

पर्वों में होली की प्रमुखता इसलिए मानी गई है कि उसे नवान्न की फसल आने पर सामूहिक वार्षिकोत्सव के रूप में विशाल यज्ञ आयोजन के साथ मनाया जाता था। उपलब्धियों के अधिकतम उपयोग लोकमंगल के लिए—यही है 'यज्ञ-दर्शन'। स्वयं न खाकर श्रेष्ठ वस्तुओं को वायुभूत बनाना और उसे विश्वभर में अशुभ निवारण एवं सुख-संवर्द्धन के लिए वितरण कर देना, उसी उद्देश्य को लेकर यज्ञ किए जाते हैं। यह प्रयोजन इतना महान है कि यदि लोक मान्यता में, जन-परंपरा में इसे स्थान मिल सके तो समझना चाहिए कि सतयुग के वापस लौट आने में अब कोई संदेह या अवरोध शेष नहीं रह गया। होली पर्व एवं अन्य सामुदायिक शुभारंभों, हर्षोत्सवों में यज्ञकृत्य को प्रमुख धर्मानुष्ठान की तरह प्रयुक्त करने के पीछे यह रहस्य सन्निहित है कि उपस्थित समुदाय को इस भावना से परिचित एवं प्रभावित किया जाए।

यज्ञीय प्रक्रिया—आत्मबल का अभिवर्द्धन, पापों का प्रायश्चित, व्यक्तित्व की प्रखरता, दिव्य क्षमताओं का उभार, अतींद्रिय क्षमताओं का विकास, दैवी अनुग्रह में उपलब्धि जैसे अन्य रहस्यमय कारण भी सन्निहित हैं। अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए अनेकों स्तर के यज्ञानुष्ठानों का विधान है। ब्राह्मणत्व की प्राप्ति में यज्ञ-प्रक्रिया को उच्चस्तरीय विधान के रूप में निरूपित किया गया है। अनुष्ठानों की

पूर्णता, जप के अनुपात से अग्निहोत्र करने के साथ जुड़ी है। गायत्री अनुष्ठानों की पूर्णाहुति में अग्निहोत्र को आवश्यक माना गया है। जप और यज्ञ की पारस्परिक सघनता और अविच्छिन्नता विज्ञजन सदा से जानते और मानते रहे हैं।

यज्ञपैथी—एक समग्र उपचार-प्रक्रिया—यज्ञ का एक भौतिक पक्ष भी है। शारीरिक रोगों का निवारण, मानसिक सनकों, उद्विग्नताओं एवं विक्षिप्तताओं का निराकरण, वायुमंडल का संशोधन, वातावरण का परिष्कार, अंतरिक्ष से उपयोगी पर्जन्य वर्षा, प्राणियों पर उपयोगी प्रभाव, वनस्पति जगत का उन्नयन-अभिवर्द्धन, विषाक्तता से छुटकारा जैसे कितने ही लाभ ऐसे हैं जिन्हें भौतिक विज्ञान के आविष्कारों की तुलना में कम नहीं, वरन अधिक उपयोगी ही माना जाएगा। वैदिक और तांत्रिक यज्ञों की रहस्यमयी प्रक्रियाएँ इसके अतिरिक्त हैं, जिनमें व्यक्ति, समुदाय, परिस्थिति को प्रभावित करने, दुःखद संभावनाओं को निरस्त करने, अनुकूलताओं को खींच बुलाने, प्रवाह को उलट देने जैसे कितने ही चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होते हैं। समय दूर नहीं, जब अग्निहोत्र की गणना प्राचीनकाल की तरह इस युग में भी प्रचंड शक्ति के रूप में गिनी जाने लगेगी। (इस संदर्भ में शांतिकुंज का 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' अनोखे प्रयोग-परीक्षण कर रहा है। गुरुदेव के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में उच्च शिक्षा प्राप्त अनुभवी वैज्ञानिकों की एक टीम इस कार्य में जुटी हुई है। उसके द्वारा हुई अब तक की प्रगति से यह विश्वास सुदृढ़ होता है कि एक खोई हुई कड़ी को जल्दी ही पुनः उपलब्ध किया जा सकेगा और यज्ञ को अध्यात्म क्षेत्र की तरह ही भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी उच्चस्तरीय सम्मान मिलेगा।)

देवसंस्कृति का प्रसार-विस्तार यज्ञायोजनों से—आज की परिस्थिति में यज्ञायोजनों को देवसंस्कृति का प्रत्यक्ष प्रदर्शनात्मक रूप प्रस्तुत करने के रूप में भी आयोजित किया जा सकता है। प्रतीकों के माध्यम से प्रशिक्षण करने की पद्धति सभी क्षेत्रों में विद्यमान है। मंदिरों में प्रतिष्ठापित देव प्रतिमाएँ भी इसी प्रयोजन की पूर्ति करती हैं कि दृश्य के सहारे आस्तिकता का दर्शन हृदयंगम किया जाए और भक्तिभाव

उभारा जाए। देवसंस्कृति के तत्त्वदर्शन को यज्ञायोजनों के साथ समझने-समझाने में असाधारण सहायता मिल सकती है।

इन दिनों धार्मिक आयोजन घर-घर, समय-समय पर, स्थान-स्थान पर करते रहने की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए अग्निहोत्र से बढ़कर सरल, सस्ता, प्रभावी और उपयोगी कार्यक्रम दूसरा नहीं हो सकता है। इसमें सामूहिक श्रमदान, पारस्परिक सहयोग, मिल-जुलकर प्रयास एवं सम्मिलित प्रयत्नों का सदुद्देश्यों के लिए नियोजन जैसे कई प्रयोजनों की साथ-साथ पूर्ति होती है। प्राचीनकाल में विभिन्न प्रयोजनों के लिए बड़े सम्मेलन बुलाए जाते थे तो उनका स्वरूप यज्ञ समारोह संपन्न करने के रूप में ही हुआ करता था। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए—राजसूय, अश्वमेध आदि आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए सर्वमेध, बाजपेय यज्ञों की विशालकाय व्यवस्थाएँ बनती थीं और उस आधार पर किए गए निर्धारण विशाल जनसमुदाय को—व्यापक वातावरण को प्रभावित करते थे।

प्राचीनकाल के उन समस्त प्रयोजनों की पूर्ति आज 'गायत्री यज्ञों' से हो सकती है। नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए किए जाने वाले छोटे-बड़े सभी आयोजनों में गायत्री यज्ञों की प्रमुखता रहनी चाहिए। पर्व-संस्कारों में, पारिवारिक समारोह, शुभारंभ, हर्षोत्सवों में गायत्री यज्ञों को आगे रखकर चलने से हर दृष्टि से ही सुविधा, प्रसन्नता और सफलता की आशा की जा सकेगी। परिवारों में धार्मिकता का वातावरण बनाने में इस प्रक्रिया का असाधारण योगदान रहेगा। निजी उपासना से लेकर सामूहिक धर्मानुष्ठानों में गायत्री यज्ञों को प्रमुखता मिलनी चाहिए। गायत्री परिवार की पद्धति से किए जाने पर वे अत्यंत सस्ते, प्रभावी, आकर्षक एवं उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति में सर्वथा समर्थ सिद्ध होते हैं।

स्मरण रहे गायत्री देवसंस्कृति की जननी और यज्ञ देवधर्म का पिता है। भारतीय परंपराओं के प्रति आस्था रखने वाले सभी उदारचेताओं को गायत्री और यज्ञ का आलोक-प्रचलन व्यापक बनाने के भाव भरे प्रयत्न करने चाहिए।

प्रसुप्त का जागरण योग प्रक्रिया से—शरीर की समर्थता को विकसित करने के लिए पौष्टिक आहार एवं व्यायाम का सहारा लेना पड़ता है। मस्तिष्क की प्रखरता जगाने के लिए अध्ययन एवं अनुभव संपादन के विभिन्न क्रिया-कलापों में संलग्न होना पड़ता है। धन कमाने के लिए श्रम-साधन जुटाने होते हैं। इसी प्रकार अज्ञात में छिपी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाने के लिए योगाभ्यासों की आवश्यकता पड़ती है। भौतिक क्षेत्र की सुख-संपदाओं से सभी परिचित हैं, पर यदि भीतर के अंतर्जगत की और ब्रह्मांडव्यापी सूक्ष्मजगत की दिव्य विभूतियों को जाना जा सके तो प्रतीत होगा कि जो प्रत्यक्ष है उसकी तुलना में अप्रत्यक्ष की महिमा असंख्य गुनी अधिक है।

आत्मा सीमित है और परमात्मा असीम। यदि महत् को प्राप्त करना है तो परमात्मा के साथ जुड़ना चाहिए। नदी से जुड़ी होने पर छोटी-छोटी नहरों को भी उधार का पानी मिलता रहता है और वे भरी-पूरी रहती हैं। परमसत्ता के साथ संबंध जोड़ लेने पर स्वल्प सामर्थ्य वाले जीव की सामर्थ्य भी असंख्य गुनी अधिक बढ़ जाती है। बड़े और ऊँचे तालाब के साथ छोटे और नीचे तालाब का संबंध नाली बनाकर जोड़ दिया जाए तो पानी का प्रवाह चल पड़ता है और कुछ ही समय में दोनों का लेविल एक हो जाता है। भक्त और भगवान के बीच घनिष्ठता उत्पन्न करने वाले प्रयासों को योग साधना कहते हैं।

आग की समीपता से गरमी और प्रकाश की समीपता से रोशनी प्राप्त होती है। चंदन के समीप उगने वाले अन्य पौधे भी सुगंधित हो जाते हैं। स्वाति बूँदों का अनुदान मिलने पर सीप में मोती उत्पन्न होते हैं। पारस को छूकर लोहा स्वर्ण बनता है। इत्र लगने पर साधारण कपड़े भी सुगंधयुक्त बन जाते हैं। पेड़ से लिपटकर बेल भी उतनी ही ऊँची उठ जाती है। गंदा नाला गंगा में मिलने के उपरांत गंगाजल की तरह सम्मानास्पद होता है। बाजीगर के हाथ से जिन धागों के सहारे कठपुतली नाचती और आकर्षण केंद्र बनती है, उन सूत्रों को प्रकारांतर से योगाभ्यास कहा जा सकता है। ईश्वर के साथ संबंध जोड़ने का प्रतिफल उपर्युक्त उदाहरणों के सहारे समझा जा सकता है।

बीज के भीतर विशालकाय वृक्ष की समस्त संभावनाएँ छिपी रहती हैं, पर वे प्रकट तभी होती हैं जब उसे बोया-उगाया जाए। अंतराल में प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई दिव्य क्षमताओं को जगाने की प्रक्रिया का नाम योग साधन है। यह इतना बड़ा पुरुषार्थ है जिसकी तुलना में धन, बल, बुद्धि, वर्चस्व आदि के सभी उपार्जन छोटे पड़ते हैं। आत्मबल संपन्न महामानवों, ऋषियों, सिद्धपुरुषों, देवदूतों ने आत्मकल्याण एवं लोक-कल्याण की जैसी चमत्कारी सफलताएँ पाईं, उन्हें संसार की सभी सफलताओं की तुलना में कहीं अधिक गरिमापूर्ण-युक्त माना जाएगा। आत्मसंतोष, लोक-सम्मान, जनसहयोग, दैवी अनुग्रह जैसे दिव्य वरदान आत्मसाधना के फलस्वरूप ही उपलब्ध होते हैं। स्वर्ग एवं मुक्ति का परमानंद अध्यात्मक्षेत्र के पुरुषार्थकर्त्ताओं को ही मिलता है। साधना के सहारे सिद्धि प्राप्त करने वाले अनुभव करते हैं कि उनने अन्य सभी बुद्धिमानों की तुलना में कहीं अधिक दूरदर्शिता का मार्ग अपनाया था।

ऋद्धि-सिद्धियों की कुंजी—योग साधनाएँ—आध्यात्मिक विभूतियों के सहारे मनुष्य न केवल अपना वरन असंख्यों का उच्चस्तरीय उपकार-उद्धार कर सकता है जबकि भौतिक उपार्जन से मात्र शारीरिक सुख-सुविधाओं का अस्थायी लाभ ही मिल सकता है। काय-कलेवर की सामर्थ्य भी सीमित है, किंतु सूक्ष्मशरीर में ऐसी रहस्यमयी विभूतियाँ भरी पड़ी हैं, जिन्हें जाग्रत कर सकने पर मनुष्य अतींद्रिय क्षमताओं का अधिष्ठाता सिद्धपुरुष बन सकता है। उस क्षेत्र के प्रयत्नों को परम पुरुषार्थ माना जाता है। योग साधना के लिए किए गए प्रयत्नों को उच्चस्तरीय बुद्धिमत्ता का परिचय माना जाता है।

योग साधन विशुद्ध चेतना विषयक विज्ञान है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान का लाभ हर किसी को मिल सकता है, उसी प्रकार अध्यात्म विज्ञान का लाभ उठा सकना हर किसी के लिए सरल है। यदि अनुभवी संरक्षण में उसे किया जा सके तो उसमें लाभ ही लाभ है, जोखिम तनिक भी नहीं। शंकर को योगेश्वर और कृष्ण को योगिराज कहा जाता

है। सातों ऋषि योग की सात धाराओं के अधिष्ठाता हैं। यह सभी गृहस्थ थे। गृहस्थ रहते योग साधन करने में किसी को किसी प्रकार की अड़चन, अवरोध का सामना नहीं करना पड़ता। राजा जनक से लेकर—रामकृष्ण परमहंस जैसे अनेक आत्माओं ने घर-गृहस्थी के बीच ही योग साधना की और लोक-परलोक सुधारा। (इस युग के मूर्द्धन्य ऋषि, गुरुदेव, आचार्य जी गृहस्थ रहते हुए भी साधना के उच्च शिखर पर पहुँचे और सिद्धियों के अधिपति बने हैं। वे इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।) आत्मिक प्रगति का, योग साधना का मार्ग सभी गृहस्थ-विरक्तों के लिए—नर-नारियों के लिए बिना किसी भेद-प्रतिबंध के समान रूप से खुला पड़ा है। सूर्य सान्निध्य जैसे इस लाभ से हर कोई हर स्थिति में लाभान्वित हो सकता है।

योग साधना के अनेक मार्ग हैं। राजयोग, हठयोग, लययोग, ध्यानयोग, नादयोग, प्राणयोग, तंत्रयोग, कुंडलिनीयोग आदि उनकी असंख्यों शाखा-प्रशाखाएँ हैं। उनमें से कौन, किसे, किस स्थिति में, किस स्थान में, किस विधान से, किस प्रयोजन के लिए, कितनी मात्रा में अपनाए? यह प्रसंग ऐसा है, जिसके लिए उस विद्या के प्रवीण, पारंगत एवं अनुभवी लोगों का परामर्श, मार्गदर्शन आवश्यक है। अन्यथा उपयोगी औषधि को भी अनुपयुक्त ढंग से ग्रहण करने पर हानि होने का खतरा हो सकता है।

इस झंझट से बचते हुए एक सरल योगाभ्यास ऐसा भी है, जिसे हर स्तर का व्यक्ति बिना किसी भय-आशंका के, परामर्श-संरक्षण के कर सकता है और प्रायः उतना ही लाभ उठा सकता है जितना कि कष्टसाध्य तप-साधना करने वाले योगीजन लंबे समय के परिश्रम से उठा पाते हैं।

युगसंधि महापुरश्चरण साधना—यह युगसंधि की वेला है। सन् १९८० से २००० तक के बीस वर्षों में महाकाल की युग-परिवर्तन प्रक्रिया का चक्र द्रुतगति से परिभ्रमण करेगा। (युग-संधि का उषाकाल का यह क्रम २००० के बाद भी चलता रहेगा।) नवसृजन की पुण्य-

प्रक्रिया में सहयोग देने के इच्छुक प्रज्ञा-परिजनों की समर्थता बढ़ाने के लिए इन दिनों हिमालय के अध्यात्म ध्रुवकेंद्र से एक विशेष प्रकार के अनुदानों का वितरण हो रहा है। इस सूत्र-शृंखला से जुड़ जाने पर उस वितरण का लाभ लिया जा सकता है। बिजलीघर से जुड़ जाने पर बल्ब, पंखे, हीटर, कूलर आदि अनायास ही गतिशील हो उठते हैं। यह उन यंत्रों का अपना उपार्जन नहीं, उपलब्ध अनुदान है। माता अपने बच्चों को दूध पिलाती और परिपुष्ट बनाती है। चिड़िया अपने मुख में दाना पीसकर चूजे के मुँह में उतारती है। ठीक इसी प्रकार यह आध्यात्मिक अनुदानों का वितरण-प्रवाह भी है, जिसे प्राप्त कर नवसृजन शृंखला से संबद्ध हुए सभी प्रज्ञापरिजन आगत वर्षों में सरलतापूर्वक लाभ उठाते रह सकते हैं।

तीन प्रकार के प्राण-प्रवाह—अध्यात्म के ध्रुवकेंद्र हिमालय के हृदय क्षेत्र से इन दिनों प्रातः-सायं तीन स्तर के सामर्थ्य प्रवाह रेडियो तरंगों की तरह प्रवाहित होते हैं। समय है प्रातः सूर्योदय से दो घंटा पूर्व से लेकर सूर्योदय तक। रात्रि को सूर्यास्त से लेकर दो घंटा रात्रि बीतने तक। इन चार घंटों में न्यूनतम पंद्रह मिनट और अधिकतम आधा घंटा। इस साधनात्मक ध्यान को करने के लिए कोई भी बैठ सकता है और समान रूप से बिना किसी अड़चन के लाभ उठा सकता है। इन चार घंटों में जब जिसे अनुकूलता पड़ती हो एक बार या दो बार इस साधना चक्र में सम्मिलित रहा जा सकता है। हर व्यक्ति एकाकी भी बैठ सकता है और यह अभ्यास सामूहिक रूप से भी किया जा सकता है।

स्नान करके बैठना अधिक उपयुक्त है। पर जो न कर सके उनके लिए अनिवार्यता नहीं है। नित्यकर्म से निपटकर—हाथ, मुँह धोकर भी इस साधना के लिए बैठा जा सकता है। कुर्सी पर बैठने की अपेक्षा जमीन पर आसन बिछाकर बैठना उत्तम है। यों असमर्थता की स्थिति में तो उसे चारपाई पर सोते हुए भी कर सकते हैं। पालथी मारकर बैठें—कमर सीधी रखें—मुख सूर्योदय की दिशा में पूर्व की ओर रखें। इस प्रयोग में पूजा-सामग्री रखने या कोई पूर्व विधान करने

की आवश्यकता नहीं है। ध्यानमुद्रा में बैठकर प्रयोग चालू किया जा सकता है।

ध्यान मुद्रा के पाँच अनुशासन हैं। (१) शांतचित्त—मन को उछल-कूद न करने देना, धारणा में नियोजित किए रहना। (२) स्थिर शरीर—हाथ, पैर, गरदन आदि को इधर-उधर न घुमाना, शरीर को पाषाण-प्रतिमा जैसा स्थिर रखना। (३) कमर सीधी—मेरुदंड को सीधा रखना ताकि इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के प्रवाह ठीक प्रकार बह सकें। (४) हाथ गोदी में—बायाँ हाथ नीचे, दाहिना ऊपर। (५) आँखें बंद—वृत्तियों को बाहर से सिकोड़कर अंतर्मुखी बनाना। यह ध्यान मुद्रा—प्रस्तुत योग साधना के अंतर्गत की जाने वाली ध्यान-धारणा में आवश्यक एवं उपयोगी समझी गई है।

इस अकेली ध्यान मुद्रा को अपनाकर मात्र प्रातःकालीन स्वर्णिम सूर्य सविता देवता का ध्यान किया जाए तो भी बहुत लाभ हो सकता है। ध्यान के समय अनुभूतिपरक भावना जमाई जाए कि सविता की प्रकाश किरणें स्थूलशरीर में सत्कर्म की—सूक्ष्मशरीर में सद्ज्ञान की—कारणशरीर में सद्भाव की प्रेरणा भर रही हैं तो इतने छोटे प्रयोग भर से स्फूर्ति बढ़ती और समर्थता एवं उत्कृष्टता बढ़ती अनुभव की जा सकती है।

यहाँ हिमालय के अनुदान-प्रवाह की चर्चा की जा रही है जो असाधारण महत्त्व की है और उससे प्रज्ञापरिजन उच्चस्तरीय लाभ उठा सकते हैं। जिन तीन प्रवाहों के अनुदान इन दिनों उपलब्ध किए जा सकते हैं उनमें से एक है—स्थूलशरीर में प्राण संचार भर देने वाला—मूलाधार से संबंधित कुंडलिनी प्रवाह। दूसरा है सूक्ष्मशरीर में ज्योति संचार करने वाला—आज्ञाचक्र उन्मीलन। यही है तृतीय नेत्र को ज्योतिर्मय बनाना। तीसरा है कारणशरीर में श्रद्धा-संचार करने वाला—हृदयचक्र में भक्ति-भावना का उभार। इन तीनों को क्रमशः पारस, कल्पवृक्ष और अमृत अनुदान भी कहा जा सकता है।

प्राण संचार का प्रतिफल है—जीवनीशक्ति, साहसिकता एवं प्रतिभा। ज्योति जागरण से दूरदृष्टि, दिव्यदृष्टि एवं अंतर्दृष्टि प्राप्त होती

है। हृदयचक्र में भावश्रद्धा उभरने से तृप्ति, तुष्टि, शांति का अनुभव होता है।

भीष्म पितामह में जीवनीशक्ति का बाहुल्य था। वे मृत्युंजय बने। रुग्णता एवं अकाल मृत्यु से बचकर स्वेच्छा मरण का वरण कर सके। नेपोलियन की साहसिकता प्रसिद्ध है। बुद्ध, गांधी जैसे प्रतिभाशाली कोटि-कोटि मानवों को प्रभावित कर सकने में सफल हुए। यह कुंडलिनी जागरण एवं प्राण-संचार का प्रतिफल है।

आज्ञाचक्र को टेलीविजन, टेलीस्कोप, एक्स रेज, लेसर रेज जैसी क्षमता वाला संयंत्र कह सकते हैं। उसे जगाने से असंख्यों अतींद्रिय क्षमताएँ उभरती हैं। यही तीसरा नेत्र है जो शंकर एवं दुर्गा के भ्रूमध्य भाग में देखा जा सकता है। इसी को खोलकर शिवजी ने कामशत्रु को जलाया था और दमयंती ने आततायी व्याध को भस्म किया था। गांधारी ने इस दिव्यदृष्टि से अवलोकन करके दुर्योधन को वज्र जैसा अभेद्य बना दिया था।

हृदयचक्र में अमृतकलश है, जिसका रसास्वादन करने वाला भाव संवेदना, श्रद्धा एवं निष्ठा की दृष्टि से देवोपम बनता है। भगवान का निवास यहीं है। हनुमान ने अपना हृदय खोलकर दिखाया था कि उनके इष्टदेव वहीं प्रत्यक्ष विराजमान हैं। सहृदयता का केंद्र यही है। ईश्वर का मिलन और उनके साथ एकात्म होने का ब्रह्मानंद इसी लोक में उपलब्ध होता है।

इन तीनों में जिसे जिस स्तर की साधना रुचिकर लगे, अनुकूल पड़े, वह उसे अपना सकता है। एक-एक महीने तीनों का अभ्यास करके, उनके प्रतिफल की तुलना करके इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में उसे इनमें से कौन सी अधिक रुचिकर एवं फलप्रद सिद्ध होती है। यों यह तीनों ही तीन शरीर स्तरों को समुन्नत बनाने में समान रूप से उपयोगी हैं। अनुकूलता अपनी-अपनी विशेष स्थिति एवं आवश्यकता पर निर्भर है।

तीनों साधनाओं में जो भावनाएँ करनी होती हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) प्राण संचरण (कुंडलिनी स्फुरण)

हिमालय का सर्वोच्च शिखर—हिमाच्छादित। अध्यात्म का ध्रुव-केंद्र। उफान-उभार-प्राणधारा का। शुभ्र-चमकीले बादलों जैसा। प्रवाह हिमालय से साधक तक। प्रवेश साधक के ब्रह्मरंध्र में। ग्रहण-धारण। ब्रह्मरंध्र—मस्तिष्क मध्य—सहस्रारचक्र। दिव्य प्रवाह का अवधारण सहस्रारचक्र में।

प्राण-प्रवाह सहस्रार से मूलाधार तक। मूलाधार से सहस्रार तक। सहस्रार से मूलाधार तक। मूलाधार से सहस्रार तक। (यही **उतार-चढ़ाव दस बार**।) सहस्रार मध्य। मूलाधार—मल-मूत्र छिद्रों का मध्य। प्राण-प्रवाह का मार्ग मेरुदंड-देवयान। प्राण-मंथन। समुद्र मंथन। जीवन-मंथन। शक्ति-मंथन। मंथन-मंथन-मंथन। **(दस बार मंथन।)**

मंथन से प्राणविद्युत की उत्पत्ति। अग्निशिखा की जाग्रति। अग्नि शिखा कुंडलिनी। कण-कण में प्राणविद्युत। नस-नस में प्राणविद्युत। रोम-रोम में प्राण विद्युत। प्राण-विद्युत कुंडलिनी। साधक अग्निपिंड। प्राणपुंज। ओजवान, प्राणवान।

ॐकार का गुंजन—**पाँच बार**—शंखनादवत्।

ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय।

मृत्योर्माऽमृतं गमय। तीन बार पुनरावृत्ति।

(२) ज्योति अवतरण (दिव्यदृष्टि जागरण)

हिमालय का सर्वोच्च शिखर-हिमाच्छादित। अध्यात्म का ध्रुव-केंद्र। स्वर्णिम सूर्योदय। स्वर्णिम सूर्योदय। स्वर्णिम सूर्य-सविता। गायत्री का प्राण-सविता। ज्योति विस्तार साधक तक। प्रवेश ज्योति किरणों का—साधक के आज्ञाचक्र में। तृतीय नेत्र में। ग्रहण-धारण। आज्ञा-चक्र—भ्रूमध्य भाग। दिव्य ज्योति—प्रज्ञा। कण-कण में ज्योति—नस-नस में ज्योति, रोम-रोम में ज्योति। साधक ज्योतिवान-तेजवान-प्रज्ञावान।

स्थूलशरीर ज्योतिवान-सूक्ष्मशरीर ज्योतिवान-कारणशरीर ज्योतिवान-रक्त ज्योतिवान-मांस ज्योतिवान-अस्थि ज्योतिवान। स्थूल-शरीर ज्योतिवान। मन ज्योतिवान-बुद्धि ज्योतिवान-चित्त ज्योतिवान।

सूक्ष्मशरीर ज्योतिवान। अंतर्जगत ज्योतिवान—अंतरात्मा ज्योतिवान—अंत:करण ज्योतिवान।

साधक ज्योतिपिंड-तेजपुंज—प्रज्ञा पुंज।

ॐकार का **पाँच बार** गुंजन शंखनादवत्।

ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। तीन बार पुनरावृत्ति।

(३) रस वर्षण (प्रभु मिलन)

हिमालय का सर्वोच्च शिखर-हिमाच्छादित। अध्यात्म का ध्रुव-केंद्र। उफान-उभार अमृत का दूध झाग-सा। हिलोरें-तरंगें साधक तक। प्रवेश साधक के हृदयचक्र में। ग्रहण-धारण। उफान अमृत का, भावश्रद्धा का।

अमृत वर्षा—अनंत अंतरिक्ष से। घनघोर अमृत वर्षा। साधक रस-विभोर। आनंद से सराबोर। कण-कण में अमृत। नस-नस में अमृत। रोम-रोम में अमृत।

समर्पण साधक का परब्रह्म को। विलय-विसर्जन। एकत्व-अद्वैत। भक्त-भगवान एक। पयपान। सोमपान। अमृतपान। रसपान। मिलन से कायाकल्प। परिवर्तन। तमस का ऊषा में परिवर्तन। जड़ता का चेतना में परिवर्तन। कामना का भावना में परिवर्तन। क्षुद्रता का महानता में परिवर्तन। पृथकता का एकता में परिवर्तन। आत्मा का परमात्मा में परिवर्तन। एकत्व-अद्वैत। तृप्ति-तुष्टि-शांति।

ॐकार गुंजन—**पाँच बार**—शंखनादवत्।

ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय। तीन बार पुनरावृत्ति।

आरंभ में ये भावनाएँ अभ्यास में उभारने के लिए किसी मार्गदर्शक या टेप रिकॉर्डर का सहारा लिया जा सकता है। बाद में जब यह क्रम अभ्यास में आ जाए तो फिर बिना किसी की सहायता के एकाकी अभ्यास के सहारे ही करना चाहिए।

ध्यान के समय वातावरण शांत रहे। या शांत वातावरण चुना जाए। आवाजें, हलचलें जितनी कम होंगी उतना ही ध्यान ठीक प्रकार

लगेगा। इसलिए पहले से ही यह प्रबंध करना चाहिए कि साधना के समय ध्यान बँटाने वाली आवाजें या हलचलें या तो हों ही नहीं या न्यूनतम हों।

युगसंधि में नैष्ठिक साधकों का सम्मिलित गायत्री महापुरश्चरण चलता रहेगा। उसमें पाँच माला गायत्री मंत्र का जाप सविता के प्रकाश का ध्यान करते हुए करने का नियम है। न्यूनतम सप्ताह में एक बार अग्निहोत्र में सम्मिलित होना—आश्विन और चैत्र की नवरात्रियों में २४-२४ हजार के अनुष्ठान भी इन नैष्ठिक उपासकों को करना होता है। गुरुवार को ब्रह्मचर्य, २ घंटे का मौन एवं एक समय भोजन करने का अर्द्ध उपवास का नियम भी युगसंधि महापुरश्चरण के भागीदारों द्वारा संपन्न होता है। वर्ष में जितनी कमी रहे उसकी सूचना शांतिकुंज देने से उसकी पूर्ति करा दी जाती है।

सामूहिक साधना—अति महत्त्वपूर्ण एवं फलदायी—एक समय में—एक भावना से एकसी प्रार्थना-साधना करने से सूक्ष्मजगत में असाधारण स्तर का प्रचंड प्रवाह उत्पन्न होता है और उसका विशेष लाभ समस्त संसार के जीव जगत को मिलता है। अंतरिक्ष के संशोधन एवं वातावरण के अनुकूलन में इस सामूहिक प्रार्थना उपचार से महत्त्वपूर्ण सहायता मिलती है। प्रार्थना करने वाले इस प्रयोग में सम्मिलित रहने पर विशेष रूप से लाभान्वित होते हैं।

इस योजना के अंतर्गत सभी प्रज्ञापरिजन, सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय जहाँ भी—जिस स्थिति में हों, अपने सामान्य कार्य को रोककर न्यूनतम चौबीस बार गायत्री जाप करते हैं। इस नियम का निर्वाह करते रहने से नियमितता की संकल्प निष्ठा बनती है और साधक का संकल्प बल-मनोबल बढ़ता है। विश्व विभीषिकाओं के समाधान एवं उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में इस बूँद-बूँद करके समुद्र बनने वाली सामूहिक साधना का चमत्कारी प्रतिफल होगा। इस प्रचलन का अधिकाधिक विस्तार होना चाहिए। उपर्युक्त सभी साधनाएँ गायत्री योग साधना के अंग-अध्याय समझे जाने चाहिए।

❐❐

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)